



ISSN Print: 2394-7500  
ISSN Online: 2394-5869  
Impact Factor: 5.2  
IJAR 2017; 3(5): 907-910  
[www.allresearchjournal.com](http://www.allresearchjournal.com)  
Received: 10-03-2017  
Accepted: 16-04-2017

### डॉ. अंजना रानी

एसोसिएट प्रोफेसर,  
दर्शनशास्त्र विभाग, श्री  
गोविंद गुरु राजकीय  
महाविद्यालय, बांसवाड़ा,  
राजस्थान, भारत

Corresponding Author:

### डॉ. अंजना रानी

एसोसिएट प्रोफेसर,  
दर्शनशास्त्र विभाग, श्री  
गोविंद गुरु राजकीय  
महाविद्यालय, बांसवाड़ा,  
राजस्थान, भारत

## वेदांत में मोक्ष

### डॉ. अंजना रानी

#### सारांश

पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है। धर्मानुकूल अर्थ और काम के सेवन के बाद अंतिम मंजिल मोक्ष ही है। विश्व की किसी भी भाषा में 'मोक्ष' जैसा शब्द नहीं है। स्वर्ग से ऊपर पश्चिम की दृष्टि नहीं जाती। भारतीय दृष्टि बहुत ही गहरी और सूक्ष्म है। जीवन को गहराई से देखने के बाद व्यक्ति यहां बार बार आना नहीं चाहता। अतः आवागमन से मुक्ति की कामना वाले भारतीय ऋषियों ने मोक्ष की अवधारणा दी। वेदांत ने इस अवधारणा को बहुत ही व्यापक और तार्किक रूप दिया।

**कूट शब्द:** आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय

#### प्रस्तावना

भारतीय दर्शन के अनुसार यह तन एक पुर (नगर) है जिसमें इसका ईश (स्वामी) आत्मा निवास करता है। उस पुरुष का अर्थ (उद्देश्य) चार है-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इसी को पुरुषार्थ-चतुष्टय कहा जाता है। लौकिक और पारलौकिक दोनों पक्ष पुरुषार्थ-चतुष्टय में समाहित है लेकिन पुरुष का अंतिम अर्थ तो मोक्ष ही है। अर्थात् मोक्ष परम-पुरुषार्थ है। यह जीवन आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक नामक त्रिविध दुखों से भरा है। इन त्रिविध दुखों से एकांतिक और आत्यंतिक छुटकारा ही मोक्ष कहलाता है। मोक्ष के लिए भिन्न-भिन्न दर्शनों में भिन्न-भिन्न मार्ग बताए गए हैं।

शंकराचार्य अपने अद्वैत वेदांत दर्शन में कहते हैं कि स्वयं के मूल स्वरूप का ज्ञान होते ही व्यक्ति मुक्त हो जाता है-“ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।”

अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या; जीव ब्रह्म ही है, अन्य दूसरा नहीं।

अद्वैत वेदांत दर्शन उपनिषदों पर आधारित है, जो सभी दर्शनों में सबसे अधिक सुसंगत एवं अकाट्य है।

सवाल उत्पन्न होता है कि जब जगत मिथ्या है तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर और अनुभव में क्यों और कैसे है?

शंकराचार्य इसके लिए चेतना की चार (4) अवस्थाओं को बताते हैं-जाग्रत, स्वप्न,सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत अवस्था हमारे संपूर्ण व्यावहारिक जीवन का आधार है।दूसरी अवस्था स्वप्न की है,जब हम विभिन्न प्रकार के सपने देखते हैं। तीसरी अवस्था सुषुप्ति की है,जब शांत और गहरी नींद में व्यक्ति होता है। सुषुप्ति में कोई विचार या स्वप्न न होने के कारण ही नींद से जगकर व्यक्ति स्वयं को बहुत तरोताजा महसूस करता है। शंकर मानते हैं कि चौथी अवस्था तुरीयावस्था है जो सबसे अधिक शांत और आनंद की अवस्था है क्योंकि इस अवस्था में कोई विषय शेष नहीं रहता।

अन्य सभी दर्शन और वेदांत के अन्य संप्रदाय भी केवल जाग्रत अवस्था को मानते हैं। जाग्रत अवस्था का अनुभव ही उनके लिए एकमात्र और पूर्ण सत्य-अनुभव है। परंतु शंकर अनुभव की इन चारों अवस्थाओं को महत्वपूर्ण मानते हैं। अनुभव किए गए पदार्थों की कुछ न कुछ सत्यता इन अनुभवों की प्रत्येक अवस्था में है। स्वप्न की तथा भ्रम की सत्यता कुछ समय तक के लिए अवश्य है। शंकर इसे प्रातिभासिक-सत्य कहते हैं। प्रातिभासिक पदार्थों की सत्यता बहुत कम समय तक रहती है, जबकि व्यावहारिक जीवन के पदार्थ आजीवन सत्य बने रहते हैं। ब्रह्मज्ञान का उदय होने पर ही जगत का वास्तविक सत्य स्वप्नवत हो जाता है। साथ ही साधक अनुभव करता है कि जीव ब्रह्म ही है-”ब्रह्म वेद् ब्रह्मैव भवति।”<sup>2</sup>

पारमार्थिक दृष्टिकोण से कहा जाता है कि केवल ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है; और जीव तथा ब्रह्म में अद्वैत संबंध है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि ”यत्र द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति...<sup>3</sup>।”

अर्थात् जब द्वैत होता है, तो एक दूसरे को देखता है, एक दूसरे को सूँघता है, एक दूसरे को चखता है, एक दूसरे से बोलता है, .....इसी भेद की अनुभूति के कारण जीव को भिन्न-भिन्न विषयों एवं तद् ज्ञान की अनुभूति होती है। जीव में भेद की भावना ही उसका मुख्य अज्ञान है। यही उसके बंधन का कारण है।

”मृत्योःस मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति”<sup>4</sup>

अर्थात् जो यहां नानात्व को देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है यानी जो द्वैत या भेद का दर्शन करता है, वह सदा जन्म तथा मृत्यु के चक्र में पड़ा रहता है।

जिस समय जीव को अपने पारमार्थिक स्वरूप का अथवा ब्रह्मैक्य का साक्षात्कार होता है, उसी समय वह मुक्त हो जाता है-

”इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति। न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः। प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥”<sup>5</sup>

अर्थात् यदि व्यक्ति यहीं (इसी लोक में) उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है तो व्यक्ति का अस्तित्व सार्थक है, यदि यहीं उस ज्ञान की प्राप्ति नहीं की, तो महाविनाश है। ज्ञानीजन विविध भूत-पदार्थों में 'उस' का विवेचन कर, इस लोक से प्रयाण करके अमर हो जाते हैं।

वास्तव में आत्मा सदैव मुक्त है, अपने पारमार्थिक रूप में। लेकिन उसे भेद की अनुभूति बंधन में रखती है। ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है-”ऋते ज्ञानात्र मुक्ति”<sup>6</sup> इसके अतिरिक्त मोक्ष का कोई दूसरा मार्ग नहीं है-”नान्यःपन्था विद्यते अयनाय।”<sup>7</sup>

पारमार्थिक दृष्टिकोण से केवल ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है; और जीव तथा ब्रह्म में अद्वैत संबंध है। ब्रह्म अपने आप में निर्गुण और निराकार है। परंतु बुद्धि द्वारा समझने का प्रयास किया जाता है तो वह ब्रह्म हमें सगुण और साकार प्रतीत होता है। इसी को शंकर सगुण ब्रह्म, अपर ब्रह्म या ईश्वर कहते हैं। सगुण ब्रह्म या ईश्वर इस जगत की उत्पत्ति स्थिति और विनाश का कारण है। वह स्वयं ही इस जगत का उपादान और निमित्त कारण है। अध्यास करने की या एक वस्तु को दूसरी वस्तु समझने की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को शंकर अविद्या या माया कहते हैं। माया न सत्य है और न असत्य है बल्कि अनिर्वचनीय है। जिस प्रकार घट के भीतर के आकाश और घट के बाहर के आकाश में कोई भेद नहीं है। परंतु घट की उपाधि के कारण वे भिन्न प्रतीत होते हैं। ठीक इसी प्रकार जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है परंतु शरीर की उपाधि के कारण ही जीव स्वयं को ब्रह्म से भिन्न समझता है। मोक्ष में भ्रम, अध्यास या अज्ञान दूर हो जाता है।

शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष परमार्थ है, कूटस्थ नित्य है, आकाश के समान सर्वव्यापी है,सभी विकारों से शून्य है, नित्य तृप्त है, अवयवों से रहित है ,स्वभाव से स्वयं प्रकाश

है। वह एक ऐसी स्थिति है, जहां तक पाप और पुण्य अपने फल सहित त्रिकाल में भी नहीं पहुंच सकते-”इदं तं पारमार्थिकं कूटस्थनित्यं व्योमवत्सर्वव्यापी, सर्वविक्रियारहितं नित्यतृप्तं निरवयवं स्वयंज्योति। स्वभावम् यत्र धर्माधर्मौ सह कार्येण कालत्रयं च नोपावर्तते।”

शंकराचार्य मानते हैं कि ब्रह्म से अभेद ज्ञान शरीर रहते भी प्राप्त किया जा सकता है। अतः जीवन्मुक्ति के वे कट्टर समर्थक हैं। उनके अनुसार माया के हटते ही ब्रह्म ही है।

किंतु शंकर के मायावाद का विरोध वैष्णव वेदांतियों ने किया। उन्होंने शंकर के निर्गुण ब्रह्म का भी तिरस्कार किया और उसके स्थान पर सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया। वैष्णव वेदांतियों के अनुसार ब्रह्म सगुण है, जगत ब्रह्म की आत्मसृष्टि होने के कारण सत्य है, जीव अणुरूप है तथा उसके मोक्ष प्राप्त करने का एक ही सुरक्षित साधन है -भक्ति।

रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत, मध्वाचार्य का द्वैत, निंबार्क और चैतन्य का द्वैताद्वैत या भेदाभेद तथा वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत यही मानता है कि मोक्ष की उच्चतम अवस्था में भी जीव अपनी वैयक्तिकता बनाए रखता है और ईश्वर या ब्रह्म की भक्ति में लीन रहता है। उपनिषदों में वर्णित जगत का मिथ्यात्व तात्त्विक सत्य नहीं, बल्कि केवल उपाय है जिससे कि जीव उसमें लिप्त न हो जाए।

मोक्ष की अवस्था में जीव को ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप तथा जीव-जगत के ब्रह्म से वास्तविक संबंध का ज्ञान हो जाता है। रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म का जीव और जगत से विशिष्ट प्रकार का अद्वैत संबंध है; जैसे द्रव्य का उसके गुणों से या शरीर का उसके अंगों से। मध्वाचार्य के अनुसार जीव कभी भी ब्रह्म नहीं बन सकता और मोक्ष की उच्चतम अवस्था में उसे पंच-भेदों का सम्यक ज्ञान हो जाता है-ईश्वर और जीव के बीच भेद, ईश्वर और जड़ पदार्थों के बीच भेद, जीवात्मा और जड़ पदार्थों के बीच भेद, एक जीव और दूसरे जीव के बीच भेद तथा एक जड़ पदार्थ का दूसरे जड़ पदार्थ से भेद।

निंबार्क और चैतन्य ब्रह्म के जीव और जगत से भेद और अभेद दोनों की सत्यता को स्वीकार करते हैं। ब्रह्म का जीव और जगत से वही संबंध है जो सागर का उसकी लहरों से है। लहर सागर से भिन्न नहीं है परंतु वह स्वयं ही सागर भी नहीं है। चैतन्य कहते हैं कि ब्रह्म और जीव

का संबंध मानव बुद्धि के लिए अगम्य है, अतः उनका सिद्धांत अचिंत्य भेदाभेदवाद कहलाता है।

वल्लभाचार्य जीव और ब्रह्म में अद्वैत प्रतिपादित करते हैं परंतु यह अद्वैत शंकर के अद्वैत से भिन्न है। किसी चिंगारी का अग्नि से जैसा संबंध होता है उसी प्रकार का संबंध जीव और ब्रह्म में है। शंकर के विपरीत वे जगत को सत्य मानते हैं और ईश्वर की दिव्य कृपा को ही मोक्ष का एकमात्र साधन मानते हैं।

कोई भी वैष्णव वेदांती शंकराचार्य के सद्यःमुक्ति अर्थात् ब्रह्म ज्ञान होते ही मुक्ति के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। वे इतना ही मानते हैं कि ब्रह्म ज्ञान से जीव मोक्ष प्राप्त करने के योग्य हो जाता है। क्योंकि जीव के सभी संचित कर्मों का नाश हो जाता है और संचयीमान कर्म उसकी अलिप्तता के कारण अब उसके बंधन का कारण नहीं बनते। परंतु प्रारब्ध कर्मों का नाश भोग के द्वारा ही होगा। प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त होने पर तथा शरीर त्याग देने पर जीव की ब्रह्म लोक की आध्यात्मिक यात्रा प्रारंभ होती है। जीव की सभी ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियों का मन में लय हो जाता है, फिर मन का प्राण में और प्राण का आत्मा में लय हो जाता है। एक बार मुक्त आत्मा के ब्रह्मलोक पहुंच जाने पर वहां से पुनरागमन का कोई भय नहीं रहता, यह सालोक्य-मुक्ति है। ब्रह्म लोक में रहते हुए आत्मा ब्रह्म के ऐश्वर्य का उपभोग करती है इसको सार्ष्टि-मुक्ति कहते हैं। फिर मुक्त आत्मा धीरे-धीरे ब्रह्म के समीप आती है जिसे सामीप्य-मुक्ति कहते हैं। फिर मुक्त आत्मा धीरे-धीरे ब्रह्म के समान बन जाती है, जिसको सारूप्य-मुक्ति कहते हैं। फिर वह ब्रह्म के शरीर में प्रवेश कर जाती है और उससे ऐक्य स्थापित करती है जिसे सायुज्य-मुक्ति कहते हैं।

परंतु सायुज्य की इस अवस्था में जो सर्वोच्च अवस्था है, मुक्त आत्मा अपने वैयक्तिकता को कायम रखती है और स्वयं को ईश्वर की भक्ति में लीन रखती है। वैष्णव वेदांतियों के अनुसार मोक्ष में केवल अहंकार का नाश होता है, ससीमता की समाप्ति होती है, मुक्त आत्मा केवल ब्रह्म के समान बन जाती है, स्वयं ब्रह्म नहीं बन जाती। ब्रह्म के साथ यह समानता भी सीमित ही होती है। जगत व्यापार की शक्ति और जीव पर कृपा प्रदान करने का अधिकार ब्रह्म के पास ही रहता है। मुक्त आत्मा केवल ब्रह्मानंद के उपभोग तक सीमित रहती है क्योंकि मुक्त आत्मा अणुरूप ही रहती है जबकि ब्रह्म विभु है।

ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने स्वयं का ब्रह्म से अभेद स्थापित कर लिया है, कोई कार्य शेष नहीं बचता। मुक्त पुरुष सभी कार्यों को स्वतःस्फूर्ति से केवल शरीर के धर्म समझकर करता है। उसके संचित कर्मों का नाश हो जाता है और संचयीमान कर्म अलिप्त होने के कारण उसको नहीं बांधते। परंतु प्रारब्ध कर्मों को उसे भोग द्वारा ही समाप्त करना पड़ता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि जीव और ब्रह्म के ऐक्य ज्ञान से ही मोक्ष होता है तब इस अभेद ज्ञान के साक्षात्कार के क्या साधन हैं? उपनिषदों में आत्म साक्षात्कार के लिए श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन ये तीन मार्ग बतलाए गए हैं। सर्वप्रथम जीव को गुरु मुख से ब्रह्म और आत्मा के अभेद ज्ञान का श्रवण करना चाहिए। फिर उस पर तर्कपूर्वक मनन करना चाहिए क्योंकि शंकाओं की निवृत्ति के बाद ही धारणा दृढ़ होती है। अंत में अभेद की धारणा को जीवन में उतारना ही निदिध्यासन है।

श्रवणादि के सफल होने के लिए साधक में वैराग्य, श्रद्धा, उपासना जैसे गुणों की आवश्यकता होती है।

मुमुक्षु में उच्च कोटि का वैराग्य नहीं हो तो वह लौकिक प्रलोभनों के पार नहीं जा सकता। कठोपनिषद में यमराज ने नचिकेता को संसार के समस्त भोगों का लालच दिया किंतु लोकैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा से वह मुक्त था, अतः आत्मज्ञान का अधिकारी बना।

श्रद्धा का अर्थ है "तत्त्वमसि" जैसे महावाक्यों में अडिग आस्था को रखना। छांदोग्योपनिषद् में आरूणी ने श्वेतकेतु को बरगद का बीज देकर उसे फोड़ने को कहा। किसी भी अंश में बरगद दिखाई नहीं देता किंतु आरूणी ने श्वेतकेतु से कहा-हे सौम्य! बीज के किसी अंश में बरगद दिखाई न दे फिर भी यह मानना कि इस छोटे से बीज में बरगद छिपा है, श्रद्धा है।

उपासना मनुष्य के हृदय को शुद्ध करने की विधि का नाम है। क्योंकि शुद्ध हृदय में ही वैराग्य और श्रद्धा का जन्म होता है। अशुद्ध अंतःकरण में श्रवणादि का प्रभाव वही होता है जो बंजर भूमि में बीज बोने का होता है।

वैराग्य, श्रद्धा, उपासना के द्वारा मुमुक्षु श्रवण-मनन-निदिध्यासन से उस ब्रह्म को जानकर स्वयं ब्रह्म हो जाता है फिर उसे अनुभव होता है कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।<sup>9</sup>

## सन्दर्भ

1. निरालंबोपनिषद्, ब्रह्मज्ञानावली माला
2. मुंडकोपनिषद 3.2.9)

3. बृहदारण्यकोपनिषद, मंत्र 14
4. कठोपनिषद अध्याय 2, वल्ली 1
5. केनोपनिषद, द्वितीय खंड
6. तैत्तिरीय उपनिषद, 1/11/3
7. कठोपनिषद 1/2/23
8. ब्रह्मसूत्र, शंकर भाष्य 1.104
9. छांदोग्य उपनिषद 3.14.1 -सामवेद